वैदिक यज्ञ संस्कृति

डॉ. सुभाष चन्द्र, व्याख्याता संस्कृत
श्री धर्मचन्द गांधी जैन राजकीय महाविद्यालय, बहरोड़ (अलवर)

भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा। इस भारतवर्ष की दो प्रतिष्ठाएँ है एक संस्कृत भाषा तथा दूसरी इसकी संस्कृति। वेद जैसे सर्वमङ्गलकृत् ग्रन्थ संस्कृत में है तथा यही वेद यज्ञ की महत्ता का गुणगान करते हैं। अतः ऋषि मुनियों ने प्रमुख पञ्चमहायज्ञों के साथ–साथ इन्हीं वेदों से शोध करते हुए इक्कीस यज्ञ–संस्थाएँ बनायीं। यज्ञ करने का अर्थ यही है कि जहाँ यज्ञ हो वहाँ कल्याण और शान्ति स्थापित हो। "शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः"। शुद्ध और पवित्र बनकर ही यज्ञ किये जाने चाहिए। शुद्ध का अर्थ है बाह्यशुद्धि तथा आन्तरिक शुद्धि अर्थात् व्यवहारशुद्धि। हमारा अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र होना चाहिए। तभी हम "यज्ञियासः" यज्ञिय कहलाने के योग्य बनेंगे। यज्ञिय बनने के पश्चात् व्यक्ति के अन्दर से ऐसी सुगन्धि फैलती है कि आपको देखकर सभी वाह! कह उठते हैं। यज्ञ में अलग–अलग कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए ब्रह्मा, उद्गाता होता तथा अध्वर्यु बैठते हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा–

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।

ब्रह्मात्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः।।[1]

यज्ञ का प्रधान अध्यक्ष एवं अधिष्ठाता ब्रह्मा कहलाता है। इन्हें पुरोहित, अथर्वा भी कहा गया है। कात्यायन श्रौत सूत्र में कहा– ब्रह्मानुज्ञातोनुयाजैः[2] ब्रह्मा की आज्ञा लेकर होतृगण देव आह्वान करते हैं। शतपथ में कहा– "हृदयं वै यज्ञस्य ब्रह्मा"[3] ब्रह्मा यज्ञ का हृदय होता है। उद्गाता वैदिक ऋचाओं का गान करने वाला होता है। अध्वर्यु का कार्य है यज्ञ में किसी प्रकार की हिंसा न हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इन्हें यज्ञ की प्रतिष्ठा कहा प्रतिष्ठा वा एषा यज्ञ यदध्वर्युः।[4] निरुक्त में कहा– "अध्वरं इति यज्ञ नाम ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः।"[5] अर्थात् अध्वर यज्ञ का नाम है जिसका अर्थ हिंसारहित कर्म है।

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः पडंगोवेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"।[6] महर्षि पतंजलि वेद के साथ–साथ छह अङ्गों को भी पढने को आवश्यक बताया। इन छह अङ्गो में दूसरा अङ्ग "कल्प" है। कल्पसूत्रों के मुख्यतः चार भेद श्रौत्रसूत्र गृह्यसूत्र धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र हैं। इन सूत्र ग्रन्थों में विशेष रूप से कर्मकाण्डविधान विधि, प्रयोग व सामाजिक कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया गया है। कर्मकाण्डविधान के लिए विशेषतः श्रौत्रसूत्र और गृह्यसूत्र हैं। यज्ञों को श्रौत और स्मार्त दो विभागों में विभक्त किया गया है। श्रुतिप्रतिपादित होने से या वेदों में विवेचित होने के कारण जो यज्ञविधान किये जाते हैं वे श्रौतयज्ञ कहलाते हैं। इनमें पौर्णमास, दाक्षायाण, चातुर्मास्य, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि व अश्वमेधादि यज्ञों का वर्णन एवं विधान है। ये यज्ञ जटिल होते हुए भी विधिविधान से किये जाते हुए यज्ञ आकर्षण के केन्द्र तथा लाभदायक होते हैं।

कर्मकाण्ड का द्वितीय भाग गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता है जो यज्ञ तीन अग्नियों अर्थात् आहवनीय, गाहपत्य व दक्षिणाग्नि से साध्य हैं वे यज्ञ स्मार्त कहलाते हैं। इन स्मार्तयज्ञों के प्रतिदिन किये जाने वाले पञ्चमहायज्ञादि प्रमुख गृह्यकर्म हैं। इनके अतिरिक्त 16 संस्कार, गृहप्रवेश व नवसस्येष्टि आदि यज्ञों का भी इन्हीं में समावेश है। इस तरह गृह्यसूत्रों का क्षेत्र समाज में ज्यादा प्रचारित ह। श्रौतयज्ञों में प्रायः काम्य यज्ञों का वर्णन हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आश्वलायन, गोभिल व पारस्करादि गृह्यसूत्रों के अनुसार पञ्महायज्ञ – विधि तथा संस्कारविधि का निर्माण किया। उनका समस्त चिन्तन श्रुति पर आधारित है। व्यक्ति को प्रतिदिन अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए। कम से कम सोलह आहुतियाँ तो अवश्य देनी चाहिए। सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द लिखते हैं– "प्रत्येक मनुष्य को सोलह–सोलह आहुति और छह–छह माशे घृतादि एक–एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून होना चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिए आर्यशिरोमणि महाशय ऋषि महर्षि राजे–महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।"[7]

महाराज जनक की सभा में बड़े–बड़े ऋषि महर्षि विद्वान् लोगों की शास्त्रीय चर्चा होती रहती थी। एकबार उनके यहाँ होने वाले दीर्घ सत्र यज्ञ में पधारे हुए महर्षि उद्दालक ने महाराज

जनक से प्रश्न किया "यज्ञ की आत्मा क्या है?" दूसरा प्रश्न किया– "यज्ञ का प्राण क्या है?" तीसरा प्रश्न किया– "यज्ञ का सार क्या है?" जब महाराज जनक अथवा और किसी ने भी उत्तर नहीं दिया तो ऋषि उद्दालक ने स्वयं दिया– "स्वाहा वाड् वै यज्ञस्य आत्मा।" जो स्वाहा है वहीं यज्ञ की आत्मा है। अपना सर्वस्य परोपकारार्थ अर्पित कर देना। स्वयं को आहूत कर देना – स्वाहा है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर था – "इदं न मम वै यज्ञस्य प्राणः" अग्नि में आहूति के पश्चात् जा "इदं न मम" कहा जाता है वही यज्ञ का प्राण है। अर्थात् मेरा या मेरे लिए कुछ नहीं है यह जो मेरे पास सभी का अधिकार है। कोई परिवार का मुखिया यदि धनोपार्जन कर रहा है तो केवल अपने लिए नहीं अपितु परिवार समाज तथा राष्ट्र के लिए। इस विषय पर स्वर्गीय महायाज्ञिक विद्यामार्तण्ड स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती एक शारीरिक प्रक्रिया पर कहते थे। यह सारा ब्रह्माण्ड और पिण्ड परोपकार में लगा हुआ है। इस शारीरिक प्रक्रिया को ही लीजिए। हम मुख में अन्न की आहुति डालते हैं। यदि मुख चाहे कि मैं रख लूँ तो मुख में सड़ांध फैल जाएगी और दूसरे शारीरिक अङ्ग कमजोर हो जाएंगे। यदि पेट ने अपने लिए रख लिया तो वहाँ सड़ जाएगा। सभी अङ्ग "इदं न मम" की भावना से कार्य कर रहे हैं और शरीर स्वस्थ है यदि दाँत में भी कोई दाना फंस गया तो उसे निकालना जरूरी हो जाता है नहीं तो वह भी दाँत को सड़ा देगा। अग्निमांद्य है, पेट ने अपने पास रख लिया तो बीमारी पैदा हो जाएगी। जमाखोर बनना नहीं है। जमाखोरों के कारण राष्ट्र में भी कई बार संकट आ जाता है। अतः "इदं न मम" की भावना से यज्ञ करो। सारे संसार में यही है– "परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः"।

तीसरे प्रश्न का उत्तर था "सुरभिर्वै यज्ञस्य सारः" निश्चय से सुगन्धि इसका सार है। यज्ञ किया और सुगन्धि नहीं फैली तो यज्ञ क्या है।

यज्ञ का अर्थ ही है कि आपने यज्ञ किया परोपकार का कार्य किया तो अवश्य आपके यज्ञ की और आपकी सुगन्धि फैलेगी नहीं तो आप जहाँ हैं वहीं हैं। यज्ञ का परोपकार का कार्य ही है फैलना और फैलाना। जहाँ से सुगन्धि फैले यही यज्ञ है।

इस ब्रह्माण्ड में होने वाले जो गुणतत्त्व गुणधर्म ईश्वर ने प्रदत्त किये हैं उन्हें व्यक्ति इसी मनुष्य योनि में ही ग्रहण कर सकता है। उन गुणधर्मों का पालन कर सकता है। इसीलिए वेद में कहा– "अस्ति न तस्माद् ओजीयो यद् विहव्येनेजिरे"[8] अर्थात् जो बड़े–बड़े यज्ञयाग आदि किये जाते हैं उनसे अधिक श्रेयस्कर अपने जीवन रूपी यज्ञ हैं।

यज्ञपद निर्वचन :

कुछ अन्य विद्वानों ने यज्ञपद के देवपूजा, सङ्गतिकरण एवं दान की इस प्रकार व्याख्या की है –

देवपूजा– यजनं इन्द्रादि देवानां पूजनं सत्कारभावनं यज्ञः।

इज्यन्ते (पूज्यन्ते) देवा अनेनेति यज्ञः।

इज्यते देवेभ्यः अस्मिन्निति यज्ञः।

इज्यन्ते देवा अस्मिन्निति यज्ञः।

इज्यते असौ इति यज्ञः।

इज्यन्ते सम्पूजिताः तृप्तिमासाद्यन्ते देवा अत्रेति यज्ञः।

सङ्गतिकरण–

(क) यजनं धर्मदेशजातिमर्यादारक्षायै महापुरुषाणामेकीकरणं यज्ञः।

(ख) इज्यन्ते सङ्गतीक्रियन्ते विश्वकल्याणाय परिभ्रमणं कृत्वा महान्तो विद्वांसः वैदिकशिरोमणयः व्याख्यानरत्नाकराः निमन्त्र्यन्ते अस्मिन्निति यज्ञः।

(ग) इज्यन्ते स्वकीय बन्धुबान्धवादयः प्रेमसम्मानभाजः सङ्गतिकरणाय आहूयन्ते प्रार्थ्यन्ते च येन कर्मणेति यज्ञः।

दान :

यजनं यथाशक्ति देशकालपात्रादिविचारपुरस्सरद्रव्यादित्यागः ।

इज्यते देवतोद्देशेन श्रद्धापुरस्सरं द्रव्यादि त्यज्यते अस्मिन्निति यज्ञः ।

महर्षि पाणिनि ने "यज"[10] धातु से "नङ्"[11] प्रत्यय लगाकर यज्ञ शब्द को निष्पन्न किया है। निरुक्तकार ने निरुक्ति की "यज्ञः कस्मात्? प्रख्यात यजतिकर्मा।"[12] इसके अनुसार देवपूजा– शास्त्रों में लिखित तैंतीस प्रकार के देवताओं की पूजा अथवा प्राकृतिक तत्त्वों की पूजा अर्थात् गुणसंवर्धन तथा जो माता–पिता आचार्य आदि हैं उन विद्वानों की पूजा सत्कार करना। सङ्गतिकरण–अग्न्यादि प्राकृतिक तत्त्वों के साथ सङ्गति। अग्नि इस संसार की पवित्रतम तत्त्व है तथा पवित्र करने वाली है उस संयोग से विभिन्न शिल्पकार्य भी सम्पन्न होते हैं। जिस प्रकार समिधा अग्नि के संयोग से प्रदीप्त हो जाती हैं इसी प्रकार विद्वान् रूपी अग्नि के संयोग से मनुष्य प्रदीप्त एवं शुद्ध होता है। ईश्वर के साथ आत्मा का सङ्गतिकरण या प्राप्ति करना दान = जलवायु आदि प्राकृतिक तत्त्वों की शुद्धि या गुणवर्धन के लिए अग्नि में गोघृत आदि उत्तमोत्तम सुगन्धित पुष्टिकारक आरोग्यवर्धक वस्तुओं की आहुति तथा संसार के प्राणीमात्र के लाभ व उन्नति के लिए विद्या अथवा धन आदि का विनियोग करना यज्ञ है। ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद अध्याय प्रथम मन्त्र[12] के भाष्य में लिखा है[13]–

इज्यन्ते सन्तोष्यन्ते याचका येन कर्मणा स यज्ञः।

इज्यते भगवति सर्वस्वं निधाप्यते येन वा स यज्ञः।

इज्यते चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः सच्छिष्येभ्यः

सम्प्रदीयते (उपदिश्यन्ते) सदाचार्यैरर्थेन वा स यज्ञः।

अर्थात् जिसमे या जहाँ पर याचकों की इच्छापूर्ति होती है वह यज्ञ है। ईश्वर में अपना सर्वस्व समर्पण कर देना यज्ञ है। और शिष्यों को अंगों सहित चारों वेदों का उपदेश दिया जाता है वह यज्ञ है।

इस प्रकार हम भारतीय संस्कृति का जब अवलोकन करते हैं तो यज्ञ का अर्थ : सर्वे भवन्तु सुखिनः एवं परोपकारमय जीवन ह। यही वैदिक यज्ञ संस्कृति है।

सन्दर्भ :

1. ऋ. 10.71.11
2. कात्या. श्रौ. सू. 3.5.5
3. शतपथ 12.8.2.23
4. तैत्तिरीय ब्रा. 3.3.8.10
5. निरुक्त 2.7
6. महाभाष्य पस्पशाह्निक
7. सत्यार्थप्रकाश
8. अथर्व– 7.5.4
9. यज्ञ प्रवचन, पृ. 2
10. देवपू जासङ्गतिकरणदारेषु
11. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्, अ. 3.3.90
12. निरुक्त 3.20
13. धात्वर्थाद्यज्ञस्त्रिधा भवति – (क) विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानं वृद्धानां देवानां विदुषाम् ऐहिकपारमार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणम्। (ख) सम्यक् पदार्थगुण संमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्या प्रत्यक्षीकरणम् नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानम । (ग) विद्यासुखधर्मादि शुभगुणानां नित्यं दानकरणम् इति।
14. भाट्टदीपिका 4/2/12